Chapter सात

तृणावर्त का वध

इस अध्याय में शकट भंजन, तृणावर्त असुर का वध तथा श्रीकृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर सारे ब्रह्माण्ड का प्रदर्शन नामक श्रीकृष्ण लीलाओं का वर्णन किया गया है।

जब शुकदेव गोस्वामी ने देखा कि महाराज परीक्षित भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं को सुनने के लिए उत्सुक हैं, तो वे परम प्रसन्न हुए और उनका वर्णन करते रहे। जब कृष्ण केवल तीन मास के

थे और पलटने का प्रयत्न कर रहे थे तथा अभी घुटनों के बल में भी असमर्थ थे तो माता यशोदा ने अपनी सखियों के साथ बच्चे के सौभाग्य के लिए अनुष्ठान करना चाहा। ऐसा अनुष्ठान प्राय: बच्चों वाली स्त्रियों के साथ मिल कर किया जाता है। जब माता यशोदा ने देखा कि बालक कृष्ण सोने वाला है, तो अन्य कार्यों में व्यस्त होने के कारण वे उसे घरेलू छकड़े (*शकट*) के नीचे सुलाकर शुभ अनुष्ठान विषयक कार्य करने लगीं। इस छकड़े के नीचे एक पालना था और यशोदा ने इसी पालने में कृष्ण को सुलाया था। बालक सो रहा था किन्तु सहसा जग जाने से वह अपने नन्हें-नन्हें पाँव चलाने लगा। इससे छकड़ा हिल गया और बड़े धमाके के साथ टूट कर चूर चूर हो गया और इसमें रखी सभी वस्तुएँ बिखर गईं। पास ही खेल रहे बालकों ने माता यशोदा को फौरन बतलाया कि छकड़ा टूट गया है, अत: माता यशोदा अन्य गोपियों के साथ अत्यन्त चिन्तित होकर वहाँ पहुँचीं। माता यशोदा ने तुरन्त बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और उसे अपना स्तन-पान कराया। इसके बाद ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के वैदिक अनुष्ठान कराये। उन ब्राह्मणों ने बच्चे की असली पहचान न जानते हुए भी बच्चे को आशीर्वाद दिया।

एक अन्य दिन, जब माता यशोदा बच्चे को गोद में लिए बैठी थीं तो उन्हें सहसा लगा कि बच्चे में सारे ब्रह्माण्ड का भार समा गया है। वे इतनी अचम्भित हुईं कि बच्चे को नीचे बैठाना पड़ा। तभी कंस का एक दास तृणावर्त चक्रवात (अंधड़) के रूप में वहाँ आया और बच्चे को उड़ा ले गया। गोकुल का सारा प्रदेश धूल से भर गया और कोई भी यह न देख पाया कि बालक कहाँ ले जाया गया। सारी गोपियाँ विह्वल थीं क्योंकि बालक धूलभरी आँधी द्वारा उड़ा ले जाया गया था लेकिन वह असुर बालक के भार के कारण आकाश में उसे दूर तक नहीं ले जा सका। वह बालक को नीचे गिरा भी नहीं पा रहा था क्योंकि बालक ने उसे मजबूती से पकड़ रखा था। अत: स्वयं तृणावर्त काफी ऊँचाई से नीचे गिर पड़ा और तुरन्त मर गया। बालक उसके कन्धे को मजबूती से पकड़े हुए था। जब वह असुर गिर पड़ा तो गोपियों ने बच्चे को उठा लिया और उसे माता यशोदा की गोद में लाकर दे दिया। यशोदा माता आश्चर्यचकित थीं किन्तु योगमाया के प्रभाव से कोई यह नहीं जान पाया कि आखिर कृष्ण है कौन और असल में घटना क्या घटी। प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति बच्चे के भाग्य की सराहना करने लगा कि वह ऐसी विपदा से बच गया है। हाँ, नन्द महाराज तो वसुदेव की अद्‌भुत भविष्यवाणी के विषय में ही सोच रहे

थे और वे उस महान् योगी की प्रशंसा करने लगे। बाद में जब बालक माता यशोदा की गोद में अँगड़ाई लेने लगा तो माता यशोदा ने उसके मुख के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा।

श्रीराजोवाच
येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥
यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा
सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं
तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने (शुकदेव गोस्वामी से) पूछा; येन येन अवतारेण—जिन जिन अवतारों के द्वारा प्रदर्शित लीलाएँ; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—नियन्ता; करोति—प्रस्तुत करता है; कर्ण-रम्याणि—कानों को सुनने में सुखद; मनः-ज्ञानि—मन के लिए आकर्षक; च—भी; नः—हम सबों के; प्रभो—हे प्रभु, शुकदेव गोस्वामी; यत्-शृण्वतः—इन कथाओं को सुनने वाले का; अपैति—दूर हो जाता है; अरतिः—अनाकर्षण; वितृष्णा—मन के भीतर का मैल जो हमें कृष्णभावनामृत में अरुचि उत्पन्न कराता है; सत्त्वम् च—हृदय के भीतर अस्तित्व; शुद्ध्यति—शुद्ध बनाता है; अचिरेण—तुरन्त; पुंसः—किसी भी व्यक्ति का; भक्तिः हरौ—भगवान् के प्रति भक्ति; तत्-पुरुषे—वैष्णवों के साथ; च—भी; सख्यम्—संगति के लिए आकर्षण; तत् एव—केवल वह; हारम्—भगवान् के कार्यकलाप जिन्हें सुनना चाहिये और गले में माला के समान रखना चाहिए; वद—कृपा करके कहें; मन्यसे—आप उचित समझते हैं; चेत्—यदि।

राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु शुकदेव गोस्वामी, भगवान् के अवतारों द्वारा प्रदर्शित विविध लीलाएँ निश्चित रूप से कानों को तथा मन को सुहावनी लगने वाली हैं। इन लीलाओं के श्रवणमात्र से मनुष्य के मन का मैल तत्क्षण धुल जाता है। सामान्यतया हम भगवान् की लीलाओं को सुनने में आनाकानी करते हैं किन्तु कृष्ण की बाल-लीलाएँ इतनी आकर्षक हैं कि वे स्वतःही मन तथा कानों को सुहावनी लगती हैं। इस तरह भौतिक वस्तुओं के विषय में सुनने की अनुरक्ति, जो भवबन्धन का मूल कारण है, समाप्त हो जाती है। मनुष्य में धीरे धीरे भगवान् के प्रति भक्ति एवं अनुरक्ति उत्पन्न होती है और भक्तों के साथ जो हमें कृष्णभावनामृत का योगदान देते हैं, मैत्री बढ़ती है। यदि आप उचित समझते हैं, तो कृपा करके भगवान् की इन लीलाओं के विषय में कहें।

तात्पर्य : जैसाकि *प्रेम-विवर्त* में कहा गया है—

कृष्ण-बहिर्मुख हैया भोग-वाञ्छा करे।

निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे॥

हमारा भौतिक जगत माया है, जिसमें हम तरह तरह के भौतिक भोगों की अभिलाषा करते हैं इसलिए हम तरह तरह के शरीर धारण करते रहते हैं (*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया*) ।*असन्नपि क्लेशद आस देह:*—जब तक हमारी यह नश्वर देह रहेगी तब तक अनेक प्रकार के—आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक—क्लेश मिलते रहते हैं। सारे कष्टों का मूल कारण यही है, जिसे कृष्णभावनामृत को जागृत करके ही दूर किया जा सकता है। इसलिये व्यासदेव तथा अन्य मुनियों द्वारा प्रस्तुत सारा वैदिक साहित्य हममें कृष्णभावनामृत को जागृत करने के उद्देश्य से लिखा गया है। यह *श्रवणं कीर्तनं* के जागरण से प्रारम्भ होता है। *शृण्वतां स्वकथा: कृष्ण:* (*भागवत* १.२.१७) । *श्रीमद्भागवत* तथा अन्य वैदिक ग्रंथ केवल कृष्ण के विषय में श्रवण करने के लिए अवसर प्रदान करने के निमित्त हैं। कृष्ण के विभिन्न अवतार हैं। वे सभी अद्भुत हैं अतएव वे हमारी उत्कंठा को जागृत करने वाले हैं किन्तु मत्स्य, कूर्म तथा वराह जैसे अवतार कृष्ण के समान आकर्षक नहीं हैं। चूँकि सर्वप्रथम, हममें कृष्ण के विषय में सुनने के लिए कोई आकर्षण नहीं होता इसीलिए यह हमारे कष्टों की जड़ बन जाता है।

किन्तु परीक्षित महाराज विशेष रूप से उल्लेख करते हैं कि बाल कृष्ण की अद्भुत लीलाएँ, जो माता यशोदा तथा अन्य व्रजवासियों को विस्मित करने वाली थीं, विशेष रूप से आकर्षक हैं। कृष्ण ने अपने बाल्यकाल से ही पूतना, तृणावर्त तथा शकटासुर का वध किया और अपने मुख के भीतर समूचा ब्रह्माण्ड दिखलाया। इस तरह एक एक करके कृष्ण की लीलाएँ माता यशोदा तथा समस्त व्रजवासियों को अत्यन्त आश्चर्यचकित करती रहीं। कृष्णभावनामृत को जगाने की विधि है—*आदौ श्रद्धा तत: साधुसंग:* (*भक्तिरसामृतसिंधु* १.४.१५) । कृष्ण की लीलाएँ भक्तों से उचित रूप से सुनी जा सकती हैं। यदि वैष्णवों से कृष्ण-लीलाओं के विषय में श्रवण करके थोड़ी-सी भी कृष्ण-भक्ति उत्पन्न की जा सके तो वैष्णवों के प्रति अनुरक्त हुआ जा सकता है क्योंकि वे कृष्णभावनामृत में ही रुचि रखते हैं। इसीलिए परीक्षित महाराज मनुष्यों के लिए संस्तुति करते हैं कि वे कृष्ण की बाल-लीलाओं को सुनें क्योंकि ये लीलाएँ मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों की लीलाओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं। शुकदेव गोस्वामी से अधिकाधिक सुनने की इच्छा से महाराज परीक्षित ने उनसे अनुरोध किया कि वे कृष्ण की बाल-लीलाओं का आगे वर्णन करें क्योंकि वे सुनने में सरल हैं तथा अधिकाधिक उत्सुकता

जागृत करने वाली हैं।

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अथ—भी; अन्यत् अपि—अन्य लीलाएँ भी; कृष्णस्य—बालक कृष्ण की; तोक-आचरितम् अद्भुतम्—वे भी अद्भुत बाल-लीलाएँ; मानुषम्—मानो मानवी बालक हों; लोकम् आसाद्य—इस पृथ्वीलोक में मानव समाज में प्रकट होकर; तत्-जातिम्—मानवी बालक की ही तरह; अनुरुन्धतः—अनुकरण किया।

कृपया भगवान् कृष्ण की अन्य लीलाओं का वर्णन करें जो मानवी बालक का अनुकरण करके और पूतना वध जैसे अद्भुत कार्यकलाप करते हुए इस पृथ्वी-लोक में प्रकट हुए।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से विनती की कि वे मानवी बालक के रूप में कृष्ण द्वारा प्रदर्शित बाल्यकाल की लीलाएँ कह सुनायें। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भिन्न भिन्न कालों में विभिन्न लोकों तथा विभिन्न ब्रह्माण्डों में अवतरित होते हैं और उन स्थानों की प्रकृति के अनुसार वे अपनी असीम शक्ति प्रदर्शित करते हैं। अपनी माता की गोद में बैठने वाला बालक विशालकाय पूतना का वध कर सकता है, यह इस लोक के वासियों के लिए अत्यन्त अद्भुत लगने वाला है किन्तु अन्य लोकों के लोग और भी उन्नत हैं अतएव उन लोकों में कृष्ण इनसे भी अधिक अद्भुत लीलाएँ करते हैं। इस लोक में मानव रूप में कृष्ण का प्राकट्य हमें उच्च लोकें के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली बनाने वाला है। इसीलिए महाराज परीक्षित उनके विषय में सुनने के लिए अधिक उत्सुक थे।

श्रीशुक उवाच
कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोलते गये; कदाचित्—उस समय (जब कृष्ण तीन मास के थे); औत्थानिक-कौतुक-आप्लवे—जब कृष्ण ३-४ मास के थे तो उनका शरीर बढ़ रहा था और वे इधर-उधर पलटने का प्रयास कर रहे थे तो इस अवसर पर स्नानोत्सव मनाया गया; जन्म-ऋक्ष-योगे—उस समय चन्द्रमा तथा शुभ नक्षत्र रोहिणी का संयोग था; समवेत-योषिताम्—एकत्र स्त्रियों के बीच (यह उत्सव मनाया गया); वादित्र-गीत—नाना प्रकार का संगीत तथा गायन; द्विज-मन्त्र-वाचकैः—योग्य ब्राह्मणों द्वारा वैदिक स्तोत्रों के उच्चारण के साथ; चकार—सम्पन्न किया; सूनोः—अपने पुत्र का; अभिषेचनम्—स्नान उत्सव; सती—माता यशोदा ने।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब यशोदा का नन्हा शिशु उठने तथा करवट बदलने का प्रयत्न करने लगा तो वैदिक उत्सव मनाया गया। ऐसे उत्सव में, जिसे उत्थान कहा जाता है और जो बालक द्वारा घर से पहली बार बाहर निकलने के अवसर पर मनाया जाता है, बालक को ठीक से नहलाया जाता है। जब कृष्ण तीन मास के पूरे हुए तो माता यशोदा ने पड़ोस की अन्य औरतों के साथ इस उत्सव को मनाया। उस दिन चन्द्रमा तथा रोहिणी नक्षत्र का योग था। इस महोत्सव को माता यशोदा ने ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मन्त्र के उच्चारण तथा पेशेवर गायकों के सहयोग से सम्पन्न किया।

तात्पर्य : वैदिक समाज में जनसंख्या की बाढ़ या बच्चे का अपने माता-पिता पर भार बनने का प्रश्न ही नहीं था। ऐसा समाज इतना सुव्यवस्थित होता है और लोग आध्यात्मिक दिशा में इतने उन्नत होते हैं कि शिशु-जन्म को कभी बोझ या चिन्ता नहीं माना जाता। शिशु ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों माता-पिता अधिक हर्षित होते हैं और शिशु द्वारा करवट लेना भी हर्ष का स्रोत बनता है। शिशु के जन्म के पूर्व भी जब माता गर्भिणी रहती है, तो अनेक अनुष्ठान सम्पन्न करने की संस्तुति की गई है। उदाहरणार्थ, जब शिशु माता के गर्भ में तीन महीने तथा सात महीने का हो जाता है, तो माता पड़ोस के बालकों के साथ भोजन करके उत्सव मनाती है। इसे *स्वादभक्षण* कहते हैं। इसी प्रकार शिशु-जन्म के पूर्व *गर्भाधान* उत्सव होता है। वैदिक सभ्यता में शिशु-जन्म या गर्भधारण कभी भार नहीं माना जाता प्रत्युत यह हर्ष का कारण बनता है। इसके विपरीत आधुनिक सभ्यता को गर्भधारण या शिशु-जन्म पसन्द नहीं है और यदि शिशु जन्म लेता है, तो कभी कभी लोग उसे मार भी डालते हैं। इससे हम सोच सकते हैं कि कलियुग के आगमन से मानव समाज कितना पतित हुआ है। यद्यपि वर्तमान समय में भी लोग अपने को सभ्य घोषित करते हैं किन्तु यथार्थत: अब मानव सभ्यता नहीं रही—केवल दो पाँव वाले पशुओं की भीड़ रह गई है।

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं
विप्रै: कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितै: ।
अन्नाद्यवास:स्रगभीष्टधेनुभि:
सञ्जातनिद्राक्षमशीशयच्छनै: ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

नन्दस्य—नन्द महाराज की; पत्नी—पत्नी (यशोदा); कृत-मज्जन-आदिकम्—जब वे तथा घर के अन्य लोग नहा चुके और बालक को भी नहला दिया गया उसके बाद; विप्रैः—ब्राह्मणों के द्वारा; कृत-स्वस्त्ययनम्—शुभ वैदिक मंत्रों के पाठ करने में लगाकर; सु-पूजितैः—जिनका ठीक से स्वागत तथा पूजन किया गया; अन्न-आद्य—उन्हें पर्याप्त अनाज तथा अन्य भोज्य वस्तुएँ देकर; वासः—वस्त्र; स्रक्-अभीष्ट-धेनुभिः—फूलों की मालाएँ तथा उपयुक्त गौवें भेंट करके; सञ्जात-निद्रा—उनींदी; अक्षम्—आँखें; अशीशयत्—बच्चे को लिटा दिया; शनैः—उस समय।

बच्चे का स्नान उत्सव पूरा हो जाने के बाद माता यशोदा ने ब्राह्मणों का स्वागत किया और उनको प्रचुर अन्न तथा अन्य भोज्य पदार्थ, वस्त्र, वांछित गौवें तथा मालाएँ भेंट करके उनकी उचित सम्मान के साथ पूजा की। ब्राह्मणों ने इस शुभ उत्सव पर उचित रीति से वैदिक मंत्र पढ़े। जब मंत्रोच्चार समाप्त हुआ और माता यशोदा ने देखा कि बालक उनींदा हो रहा है, तो वे उसे लेकर बिस्तर पर तब तक लेटी रहीं जब तक वह शान्त होकर सो नहीं गया।

तात्पर्य : स्नेहमयी माता अपने बच्चे का काफी ध्यान रखती है और यह देखती रहती है कि उसका बच्चा क्षण-भर भी विचलित न हो। बच्चा जब तक माता के पास रहना चाहता है, माता उसके पास रहती है और बच्चा अपने को काफी आरामदेह अनुभव करता है। माता यशोदा ने देखा कि उनका बच्चा उनींदा हो रहा है, तो उसे सोने की पूरी सुविधाएँ देने के लिए वे स्वयं बालक के साथ लेट गईं और जब वह शान्त हो गया तो वे उठ कर घर के दूसरे काम-काज करने लगीं।

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी
समागतान्पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा
रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

औत्थानिक-औत्सुक्य-मनाः—माता यशोदा बच्चे का उत्थान उत्सव मनाने में अत्यधिक व्यस्त थीं; मनस्विनी—भोजन, वस्त्र, आभूषण तथा गौवें बाँटने में अत्यन्त उदार; समागतान्—एकत्र मेहमानों को; पूजयती—उन्हें तुष्ट करने के लिए; व्रज-ओकसः—व्रजवासियों को; न—नहीं; एव—निश्चय ही; अशृणोत्—सुना; वै—निस्सन्देह; रुदितम्—रोना; सुतस्य—बच्चे का; सा—यशोदा; रुदन्—रोना; स्तन-अर्थी—कृष्ण जो माता के स्तन का दूध पीना चाह रहे थे; चरणौ उदक्षिपत्—क्रोध के मारे अपने दोनों पाँव इधर-उधर उछाल रहे थे।

उत्थान उत्सव मनाने में मग्न उदार माता यशोदा मेहमानों का स्वागत करने, आदर-सहित उनकी पूजा करने तथा उन्हें वस्त्र, गौवें, मालाएँ और अन्न भेंट करने में अत्यधिक व्यस्त थीं। अतः वे बालक के रोने को नहीं सुन पाईं। उस समय बालक कृष्ण अपनी माता का दूध पीना चाहता था अतः क्रोध में आकर वह अपने पाँव ऊपर की ओर उछालने लगा।

तात्पर्य : कृष्ण घरेलू छकड़े के नीचे लिटाये गये थे किन्तु यह छकड़ा वास्तव में शकटासुर का

अन्य रूप था—यह असुर बालक को मारने के लिए वहाँ आया था। कृष्ण ने अपनी माता का स्तनपान करने के बहाने इस असुर का वध करने का अवसर प्राप्त किया। उन्होंने शकटासुर को लात मारी जिससे सारा भेद खुल जाये। यद्यपि कृष्ण की माता मेहमानों के स्वागत में लगी थीं किन्तु भगवान् कृष्ण शकटासुर को मार कर उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते थे इसलिए उन्होंने छकड़े के आकार वाले असुर को लात से मारा। कृष्ण की लीलाएँ ऐसी ही हैं। वे अपनी माता का ध्यान आकृष्ट करना चाह रहे थे किन्तु ऐसा करते समय उन्होंने ऐसा उत्पात खड़ा कर दिया जिसे सामान्य लोग समझ नहीं सके। ये कथाएँ अद्‌भुत एवं आनन्द देने वाली हैं और जो भाग्यशाली हैं, वे भगवान् की इन असाधारण लीलाओं को सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यद्यपि अल्पज्ञ इन्हें मिथ्या कथाएँ मानते हैं क्योंकि उनकी बुद्धि में भूसा भरा रहता है किन्तु ये कथाएँ वास्तविक हैं। ये कथाएँ इतनी रोचक तथा प्रबुद्ध करने वाली हैं कि महाराज परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी को इनमें आनन्द आया और उनके चरणचिह्नों में चलने वाले अन्य मुक्त पुरुष भी भगवान् की अद्‌भुत लीलाओं को सुनकर अत्यन्त हर्षित होते हैं।

अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं
व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

अधः-शयानस्य—गाड़ी (छकड़े) के नीचे सोये; शिशोः—बालक का; अनः—गाड़ी; अल्पक—अधिक बड़ा नहीं; प्रवाल—नई पत्ती की तरह; मृदु-अङ्घ्रि-हतम्—उनके सुन्दर मुलायम पाँवों से मारी गई; व्यवर्तत—उलट कर गिर गई; विध्वस्त—बिखर गई; नाना-रस-कुप्य-भाजनम्—धातुओं के बने बर्तन-भांडे; व्यत्यस्त—इधर-उधर हटे हुए; चक्र-अक्ष—दोनों पहिये तथा धुरी; विभिन्न—टूटे हुए; कूबरम्—शकट का कूबर (लट्ठा), जिसमें जुआ लगा रहता है।

श्रीकृष्ण आँगन के एक कोने में छकड़े के नीचे लेटे हुए थे और यद्यपि उनके पाँव कोंपलों की तरह कोमल थे किन्तु जब उन्होंने अपने पाँवों से छकड़े पर लात मारी तो वह भड़भड़ा कर उलटने से टूट-फूट गया। पहिए धुरे से विलग हो गये और बिखर गये और गाड़ी का लट्ठा टूट गया। इस गाड़ी पर रखे सब छोटे-छोटे धातु के बर्तन-भांडे इधर-उधर छितरा गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है—जब कृष्ण अत्यन्त सुकुमार थे तो उनके हाथ-पाँव कोंपलों के समान थे फिर भी उनके पाँवों के छूने से ही गाड़ी

खण्ड-खण्ड हो गई। ऐसा उनके लिए बिलकुल सम्भव था और इसमें उन्हें अधिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ा। अपने वामन अवतार में भगवान् को अपने पाँव को इतनी ऊँचाई तक बढ़ाना पड़ा था जिससे वह ब्रह्माण्ड के आवरण में प्रवेश कर सके। इसी तरह जब भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा तो उन्हें नृसिंहदेव के रूप में विशेष स्वरूप धारण करना पड़ा था। किन्तु कृष्ण अवतार में भगवान् को इतनी शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ी। इसीलिए—*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्*—कृष्ण स्वयं भगवान् हैं। अन्य अवतारों में भगवान् को देश तथा काल के अनुसार कुछ शक्ति व्यय करनी पड़ी किन्तु इस अवतार में उन्होंने असीम शक्ति का प्रदर्शन किया। इसीलिए छकड़ा चूर चूर हो गया, उसके जोड़ टूट गये और उसके ऊपर रखे धातु के बर्तन-भांडे छितरा गये।

वैष्णव-तोषणी की टीका में लिखा है कि यद्यपि छकड़ा बच्चे से ऊँचा था किन्तु बालक आसानी से पहिए छू सकता था और इतना ही पर्याप्त था असुर को पृथ्वी पर नीचे फेंकने के लिए। भगवान् ने एक ही साथ असुर को पृथ्वी पर फेंका और छकड़े को तोड़ डाला।

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय
औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः
कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; यशोदा-प्रमुखाः—माता यशोदा इत्यादि; व्रज-स्त्रियः—व्रज की सारी स्त्रियाँ; औत्थानिके कर्मणि—उत्थान उत्सव मनाते समय; याः—जो; समागताः—वहाँ एकत्र हुए; नन्द-आदयः च—तथा नन्द महाराज इत्यादि सारे पुरुष; अद्भुत-दर्शन—अद्भुत विपत्ति देखकर (कि लदी हुई गाड़ी बच्चे के ऊपर टूट कर गिर गई थी फिर भी बालक के चोट नहीं आई थी); आकुलाः—अत्यन्त विचलित थे कि यह सब कैसे घटित हो गया; कथम्—कैसे; स्वयम्—अपने से; वै—निस्सन्देह; शकटम्—छकड़ा; विपर्यगात्—बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गया।

जब यशोदा तथा उत्थान उत्सव के अवसर पर जुटी स्त्रियों तथा नन्द महाराज इत्यादि सभी पुरुषों ने यह अद्भुत दृश्य देखा तो वे आश्चर्य करने लगे कि यह छकड़ा किस तरह अपने आप चूर चूर हो गया है। वे इसका कारण ढूँढने के लिए इधर-उधर घूमने लगे किन्तु कुछ भी तय न कर पाये।

ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ।
रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ऊचुः—कहा; अव्यवसित-मतीन्—वर्तमान स्थिति में जिनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी; गोपान्—ग्वालों को; गोपीः च—तथा गोपियों को; बालकाः—बच्चे; रुदता अनेन—ज्योंही बच्चा रोया; पादेन—एक पाँव से; क्षिप्तम् एतत्—यह गाड़ी दूर जा गिरी और छितर-बितर हो गई; न संशयः—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

वहाँ पर जुटे ग्वाले तथा गोपियाँ सोचने लगे कि यह घटना कैसे घटी? वे पूछने लगे, ''कहीं यह किसी असुर या अशुभ ग्रह का काम तो नहीं है?'' उस समय वहाँ पर उपस्थित बालकों ने स्पष्ट कहा कि बालक कृष्ण ने ही इस छकड़े को लात से मार कर दूर फेंका है। रोते बालक ने ज्योंही छकड़े के पहिये पर अपने पाँव मारे त्योंही पहिये सहित छकड़ा ध्वस्त हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

तात्पर्य : हमने यह सुना है कि लोगों को भूत-प्रेत सताते हैं। स्थूल शरीर प्राप्त न होने से भूत स्थूल शरीर को ढूँढ़ कर उसी में अड्डा जमाता है। शकटासुर ऐसा ही भूत था जिसने छकड़े में शरण ले रखी थी और कृष्ण को क्षति पहुँचाने की ताक में था। जब कृष्ण ने अपने छोटे-छोटे मुलायम पैरों से छकड़े पर प्रहार किया, तो जैसा वर्णन किया जा चुका है भूत पृथ्वी पर नीचे आ पड़ा और उसका आश्रय भंग हो गया। पूर्ण शक्तिमान होने के कारण ही कृष्ण ऐसा कर सके, जिसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* से (५.३२) होती है—

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति

पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।

आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''कृष्ण का शरीर *सच्चिदानन्द विग्रह* या *आनन्द चिन्मय रसविग्रह* है। अर्थात् उनके आनन्द चिन्मय शरीर का कोई भी अंग किसी अन्य अंग की तरह कार्य कर सकता है। भगवान् की अचिन्त्य शक्तियाँ ऐसी हैं। भगवान् को ये शक्तियाँ अर्जित नहीं करनी होतीं, वे उनके पास ही रहती हैं। इस तरह कृष्ण ने अपने नन्हें-नन्हें पाँवों से प्रहार किया, तो सारा कार्य सम्पन्न हो गया। यही नहीं, यदि कोई सामान्य बालक होता तो छकड़े के टूटने से उसे बुरी तरह चोट खा जाता किन्तु कृष्ण तो भगवान् हैं। अतएव उन्हें छकड़े के टूटने में आनंद मिला और उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य *आनन्द चिन्मय रस*—अर्थात् दिव्य आनन्द से पूर्ण होता है। इसमें कृष्ण को बड़ा आनन्द

आया।

पास खेल रहे बालकों ने देखा था कि कृष्ण ने ही छकड़े के पहिये पर लात मारी थी जिससे यह दुर्घटना घटी थी। योगमाया की योजना से सारे गोप-गोपियों ने सोचा कि यह घटना किसी अशुभ ग्रह या असुर की करामात है किन्तु वास्तव में यह सब कृष्ण द्वारा किया गया था और उन्होंने इसका आनन्द लिया था। जो कृष्ण की लीलाओं का रस लेते हैं, वे भी आनन्द चिन्मय रस पद को प्राप्त होते हैं—वे भौतिक पद से मुक्त हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति *कृष्णकथा* सुनने की आदत बना लेता है, तो निश्चय ही वह इस भौतिक जगत से परे चला जाता है, जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा होती है (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। आध्यात्मिक पद को प्राप्त किये बिना भगवान् की दिव्य लीलाओं का आनन्द नहीं उठाया जा सकता। अथवा दूसरे शब्दों मे, जो कोई भी कृष्ण की दिव्य लीलाओं का श्रवण करता है, वह भौतिक पद पर स्थित नहीं होता वरन् दिव्य आध्यात्मिक पद पर स्थित होता है।

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—उन; श्रद्दधिरे—विश्वास किया; गोपाः—ग्वाले तथा गोपियों ने; बाल-भाषितम्—एकत्र बालकों की बचकाना बात पर; इति उत—इस तरह कहा गया; अप्रमेयम्—असीम, अचिन्त्य; बलम्—शक्ति; तस्य बालकस्य—उस छोटे-से बालक कृष्ण की; न—नहीं; ते—वे, गोप तथा गोपियाँ; विदुः—अवगत थे।

वहाँ एकत्र गोपियों तथा गोपों को यह विश्वास नहीं हुआ कि बालक कृष्ण में इतनी अचिन्त्य शक्ति हो सकती है क्योंकि वे इस तथ्य से अवगत नहीं थे कि कृष्ण सदैव असीम हैं। उन्हें बालकों की बातों पर विश्वास नहीं हुआ अतएव उन्हें बच्चों की भोली-भाली बातें जानकर, उन्होंने उनकी उपेक्षा की।

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

रुदन्तम्—रोता हुआ; सुतम्—पुत्र को; आदाय—उठाकर; यशोदा—माता यशोदा ने; ग्रह-शङ्किता—बुरे ग्रह से भयभीत; कृत-स्वस्त्ययनम्—तुरन्त ही सौभाग्य के लिए अनुष्ठान किया; विप्रैः—ब्राह्मणों को बुलाकर; सूक्तैः—वैदिक स्तुतियों द्वारा; स्तनम्—अपना स्तन; अपाययत्—बच्चे को पिलाया।

यह सोच कर कि कृष्ण पर किसी अशुभ ग्रह का आक्रमण हुआ है, माता यशोदा ने रोते बालक को उठा लिया और उसे अपना स्तन-पान कराया। तब उन्होंने वैदिक स्तुतियों का उच्चारण करने के लिए तथा शुभ अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए अनुभवी ब्राह्मणों को बुला भेजा।

तात्पर्य : जब भी कोई संकट आ पड़ता है या कोई अशुभ घटना घट जाती है, तो वैदिक सभ्यता की यह प्रथा है कि उसके प्रतिकार के लिए वैदिक स्तुतियाँ कराने हेतु योग्य ब्राह्मण बुलाये जाते हैं। माता यशोदा ने इसे ठीक प्रकार से किया और अपने बच्चे को स्तन-पान कराने लगीं।

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्रा हुत्वार्चयां चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पूर्व-वत्—जिस तरह छकड़ा पहले रखा था; स्थापितम्—फिर से बर्तन-भांडे सजा कर; गोपैः—ग्वालों द्वारा; बलिभिः—बली, बलवान; स-परिच्छदम्—सारे साज-सामान सहित; विप्राः—ब्राह्मणों ने; हुत्वा—अग्नि उत्सव करके; अर्चयाम् चक्रुः—अनुष्ठान सम्पन्न किया; दधि—दही; अक्षत—चावल; कुश—कुश घास; अम्बुभिः—जल से।

जब बलिष्ठ गठीले ग्वालों ने बर्तन-भांडे तथा अन्य सामग्री को छकड़े के ऊपर पहले की भाँति व्यवस्थित कर दिया, तो ब्राह्मणों ने बुरे ग्रह को शान्त करने के लिए अग्नि-यज्ञ का अनुष्ठान किया और तब चावल, कुश, जल तथा दही से भगवान् की पूजा की।

तात्पर्य : छकड़े पर भारी भारी बर्तन-भांडे तथा अन्य सामग्री रखी हुई थी। इस छकड़े को पूर्व स्थिति में लाने के लिए काफी बल की आवश्यकता थी किन्तु ग्वालों ने इसे सरलता से सम्पन्न कर लिया। फिर गोप-जाति की प्रथा के अनुसार संकटमयी स्थिति के शमन हेतु विविध वैदिक अनुष्ठान किये गये।

येऽसूयानृतदम्भेर्षाहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥
इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो ब्राह्मण; असूय—असूया; अनृत—झूठ; दम्भ—मिथ्या अहंकार; ईर्षा—ईर्ष्या; हिंसा—अन्यों के वैभव को देखकर विचलित होना; मान—मिथ्या प्रतिष्ठा; विवर्जिता:—से पूर्णतया रहित; न—नहीं; तेषाम्—ऐसे ब्राह्मणों का; सत्य-शीलानाम्—ब्राह्मण योग्यताओं (सत्य, शम, दम इत्यादि) से युक्त; आशिष:—आशीर्वाद; विफला:—व्यर्थ; कृता:—किये गये; इति—इन बातों पर विचार करते हुए; बालकम्—बालक को; आदाय—लाकर; साम—सामवेद के अनुसार; ऋक्—ऋग्वेद के अनुसार; यजु:—तथा यजुर्वेद के अनुसार; उपाकृतै:—ऐसे उपायों से शुद्ध किया हुआ; जलै:—जल से; पवित्र-औषधिभि:—शुद्ध जड़ी-बूटियाँ मिलाकर; अभिषिच्य—(बालक को) नहलाने के बाद; द्विज-उत्तमै:—उच्च कोटि के योग्य ब्राह्मणों द्वारा; वाचयित्वा—उच्चारण करने के लिए प्रार्थना किये गये; स्वस्ति-अयनम्—शुभ स्तुतियाँ; नन्द-गोप:—गोपों के मुखिया नन्द महाराज ने; समाहित:—उदार तथा उत्तम; हुत्वा—आहुति करके; च—भी; अग्निम्—अग्नि में; द्विजातिभ्य:—उन उच्च कोटि के ब्राह्मणों को; प्रादात्—दान में दिया; अन्नम्—अन्न; महा-गुणम्—सर्वोत्तम।

जब ब्राह्मणजन ईर्ष्या, झूठ, मिथ्या अहंकार, द्वेष, अन्यों के वैभव को देखकर मचलने तथा मिथ्या प्रतिष्ठा से मुक्त होते हैं, तो उनके आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाते। यह सोचकर नन्द महाराज ने गम्भीर होकर कृष्ण को अपनी गोद में ले लिया और इन सत्यनिष्ठ ब्राह्मणों को साम, ऋग् तथा यजुर्वेद के पवित्र स्तोत्रों के अनुसार अनुष्ठान सम्पन्न करने के लिए आमंत्रित किया। जब मंत्रोच्चार हो रहा था, तो नन्द ने बच्चे को शुद्ध जड़ी-बूटियों से मिश्रित जल से स्नान कराया और अग्नि-यज्ञ करने के बाद सभी ब्राह्मणों को उत्तम अन्न तथा अन्य प्रकार के पदार्थों का स्वादिष्ट भोजन कराया।

तात्पर्य : नन्द महाराज को ब्राह्मणों की योग्यता एवं उनके आशीर्वाद पर पूरा-पूरा भरोसा था। उन्हें पूरा विश्वास था कि यदि उत्तम ब्राह्मण केवल अपना आशीर्वाद दें तो बालक कृष्ण सुखी रहेगा। योग्य ब्राह्मणों के आशीर्वाद न केवल भगवान् कृष्ण को, अपितु हर एक को सुख प्रदान करने वाले होते हैं। पूर्ण स्वावलम्बी होने के कारण कृष्ण को किसी के आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं है फिर भी नन्द महाराज ने सोचा कि कृष्ण को ब्राह्मणों के आशीर्वाद की जरूरत है। तो फिर अन्यों के लिए क्या कहा जाय? अत: मानव समाज में पुरुषों का एक आदर्श वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, होना चाहिए जो अन्यों को अर्थात् क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों को—आशीर्वाद दे सके जिससे हर कोई सुखी हो सके। इसीलिए *भगवद्गीता* (४.१३) में कृष्ण कहते हैं कि मानव समाज में चार वर्ग होने चाहिए (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:*)। ऐसा नहीं है कि हर कोई शूद्र या वैश्य बन जाय तो मानव समाज समृद्ध होगा। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्थापना की गई है सत्य, शम, दम तथा तितिक्षा जैसे गुणों से युक्त ब्राह्मणों का एक वर्ग होना चाहिए।

यहाँ *भागवत* में भी नन्द महाराज योग्य ब्राह्मणों को बुलवाते हैं। कोई जाति से ब्राह्मण हो सकते हैं

और हमारे मन में ब्राह्मण जाति के लिए आदर है किन्तु ब्राह्मण परिवारों में जन्म लेने से ही वे मानव समाज के अन्य सदस्यों को आशीर्वाद देने के योग्य नहीं बन जाते। यह शास्त्रों का निर्णय है। कलियुग में ब्राह्मण जाति में जन्मे मानव को ही ब्राह्मण मान लिया गया है। *विप्रत्वे सूत्रमेव हि* (भागवत १२.२.३)। कलियुग में दो पैसे का जनेऊ धारण करके कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण बन जाता है। नन्द महाराज ने ऐसे ब्राह्मणों को नहीं बुलवाया था। जैसाकि नारदमुनि ने कहा है (भागवत ७.११.३५)—*यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्।* शास्त्र में ब्राह्मण के लक्षण दिये हुए हैं और उसे इन लक्षणों से सम्पन्न होना चाहिए।

ऐसे ब्राह्मण जो ईर्ष्यालु नहीं हैं, गर्व से फूले नहीं रहते तथा अहंकार और मिथ्या प्रतिष्ठा नहीं दिखलाते और सतोगुण से युक्त होते हैं, वे ही उपयोगी होते हैं। इसलिए मनुष्यों के एक वर्ग को शुरू से ही ब्राह्मण बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए। *ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन् दान्तो गुरोर्हितम्* (भागवत ७.१२.१)। *दान्तः* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसे व्यक्ति का सूचक है, जो ईर्ष्यालु नहीं होता और झूठी प्रतिष्ठा के बल पर इतराता नहीं। हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन के द्वारा समाज में ऐसे ब्राह्मणों का समावेश करने का प्रयास कर रहे हैं। ब्राह्मणों को अन्ततः वैष्णव हो जाना चाहिए और यदि कोई वैष्णव है, तो उसने पहले ही ब्राह्मण के गुण अर्जित कर लिये हैं। *ब्रह्म-भूतः प्रसन्नात्मा* (भगवद्गीता १८.५४)। *ब्रह्मभूतः* शब्द ब्राह्मण बनने या ब्रह्म क्या है उसे समझने का सूचक है (*ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः*)। जो ब्रह्मभूत है, वह सदैव प्रसन्न रहता है (*प्रसन्नात्मा*)। *न शोचति न कांक्षति*—वह कभी भौतिक आवश्यकताओं से विचलित नहीं होता। *समः सर्वेषु भूतेषुः*—वह हर एक को समान रूप से आशीर्वाद देने को तैयार रहता है। *मद्-भक्तिं लभते पराम्*—तब वह वैष्णव बनता है। इस युग में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने वैष्णव शिष्यों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार का सूत्रपात इस विचार से किया कि लोग समझें कि जब कोई वैष्णव बनता है, तो वह पहले से ही ब्राह्मण के गुणों को अर्जित कर चुका होता है। इसलिए जो लोग अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में हैं और जो ब्राह्मण बनने के लिए दो बार दीक्षा प्राप्त करते हैं उन्हें सत्य, मन तथा इन्द्रियदमन, सहिष्णुता इत्यादि से युक्त होने के परम उत्तरदायित्व को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। तभी उनका जीवन सफल होगा। ऐसे ही ब्राह्मणों को नन्द महाराज ने वैदिक स्तोत्रों का उच्चारण करने के लिए बुलाया था, सामान्य ब्राह्मणों को नहीं।

श्लोक १३ में *हिंसामान* का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। *मान* शब्द मिथ्या प्रतिष्ठा या मिथ्या अहंकार का द्योतक है। जिन्हें ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण अपने को ब्राह्मण मानने का मिथ्या अहंकार था, नन्द महाराज ने उन्हें ऐसे अवसरों पर नहीं बुलाया।

श्लोक १४ में *पवित्रौषधि* का उल्लेख हुआ है। किसी भी संस्कार के अवसर पर अनेक जड़ी-बूटियों तथा पत्तियों की आवश्यकता पड़ती थी। ये *पवित्र पत्र* कहलाती थीं। कभी नीम की पत्तियाँ, कभी बेल पत्र, आम की पत्तियाँ, अश्वत्थ की या आँवले की पत्तियाँ काम में आती थीं। इसी तरह *पञ्च गव्य, पञ्च शस्य* तथा *पञ्च रत्न* थे। वैश्य जाति के होते हुए भी नन्द महाराज को यह सब पता था।

इन श्लोकों का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है *महा-गुणम्* जो सूचित करता है कि ब्राह्मणों को उच्च कोटि का स्वादिष्ट भोजन प्रदान किया जाता था। ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन प्राय: अन्न तथा दुग्ध इन दो वस्तुओं से तैयार किये जाते थे। इसीलिए *भगवद्गीता* का (१८.४४) आदेश है कि मानव समाज को गौओं को संरक्षण प्रदान करना चाहिए और कृषि को प्रोत्साहन देना चाहिए (*कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्*)। केवल पटु पाकविद्या द्वारा कृषि उपज तथा दुग्ध उत्पादनों से हजारों प्रकार के व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं। इसे *अन्नं महागुणम्* शब्दों से व्यक्त किया गया है। आज भी भारत में दूध और अन्न से हजारों प्रकार के व्यंजन तैयार करके भगवान् को अर्पित किये जाते हैं (*चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसाद। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति*)। तब प्रसाद वितरित किया जाता है। आज भी जगन्नाथ-क्षेत्र तथा अन्य बड़े बड़े मन्दिरों में अर्चाविग्रह को अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन भेंट किये जाते हैं और प्रचुर मात्रा में प्रसाद वितरित किया जाता है। उच्च कोटि के ब्राह्मणों द्वारा दक्षता के साथ पकाया गया और फिर जनता में बाँटा जाने वाला यह प्रसाद भी ब्राह्मणों या वैष्णवों से प्राप्त आशीर्वाद होता है। प्रसाद चार प्रकार का होता है (*चतुर्विध*)। नमकीन, मीठा, चटपटा तथा खट्टा स्वाद विभिन्न प्रकार के मसालों से प्राप्त किया जाता है और भोजन चार विभागों में तैयार होता है—*चर्व्य, चूष्य, लेह्य तथा पेय*—अर्थात् चबाकर खाये जाने वाले, चाटने वाले, जीभ से स्वाद लिये जाने वाले तथा पिये जाने वाले प्रसाद। इस तरह अन्न तथा घी से नाना प्रकार के प्रसाद तैयार किये जाते हैं, फिर अर्चाविग्रह पर भेंट किये जाते हैं और तब ब्राह्मणों तथा वैष्णवों में और अन्त में सामान्य जनता में वितरित किये जाते हैं। मानव समाज का यह तरीका है। गो-वध तथा भूमि के विनाश से भोजन-

समस्या हल होने वाली नहीं। यह सभ्यता नहीं है। असभ्य जंगली लोग कृषि द्वारा अन्न उत्पादन तथा गो-रक्षा से अनजान होने के कारण पशुओं को खा सकते हैं किन्तु ज्ञान में अग्रणी पूर्ण मानव समाज को कृषि से तथा गो-रक्षा से उत्तम कोटि का भोजन बनाना अवश्य सीखना चाहिए।

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गावः—गौवें; सर्व-गुण-उपेताः—पर्याप्त दूध देने से अत्यन्त गुणी होने; वासः—अच्छे वस्त्र पहने; स्रक्—माला से युक्त; रुक्म-मालिनीः—तथा सोने के हार पहने; आत्मज-अभ्युदय-अर्थाय—अपने पुत्र के अभ्युदय हेतु; प्रादात्—दान में दिया; ते—उन ब्राह्मणों ने; च—भी; अन्वयुञ्जत—उन्हें स्वीकार किया।

नन्द महाराज ने अपने पुत्र के धन-वैभव हेतु ब्राह्मणों को गौवें दान में दीं जो वस्त्रों, फूल-मालाओं तथा सुनहरे हारों से सजाई गई थीं। ये गौवें जो प्रचुर दूध देने वाली थीं ब्राह्मणों को दान में दी गई थीं और ब्राह्मणों ने उन्हें स्वीकार किया। बदले में उन्होंने समूचे परिवार को तथा विशेष रूप से कृष्ण को आशीर्वाद दिया।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने पहले ब्राह्मणों को भव्य दावत दी और तब सुनहरे हारों, वस्त्रों और फूल की मालाओं से सजी उत्तम कोटि की गौवें दान में दीं।

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

विप्राः—ब्राह्मणगण; मन्त्र-विदः—वैदिक मंत्रोच्चारण में पटु; युक्ताः—पूर्ण योगी; तैः—उनके द्वारा; याः—जो; प्रोक्ताः—कहा गया; तथा—वैसा ही हो जाता है; आशिषः—सारे आशीर्वाद; ताः—ऐसे शब्द; निष्फलाः—व्यर्थ, विफल; भविष्यन्ति न—कभी नहीं होंगे; कदाचित्—किसी समय; अपि—निस्सन्देह; स्फुटम्—यथार्थ।

वैदिक मंत्रों के उच्चारण में पूरी तरह से पटु ब्राह्मण योगशक्तियों से सम्पन्न योगी थे। वे जो भी आशीर्वाद देते वह कभी निष्फल नहीं जाता था।

तात्पर्य : ब्रह्मी गुणों से युक्त ब्राह्मण सदा योगशक्ति-सम्पन्न योगी होते हैं। उनके शब्द व्यर्थ नहीं जाते। समाज के अन्य सदस्यों के साथ अपने प्रत्येक व्यवहार में ब्राह्मण निश्चित रूप से विश्वसनीय होते हैं। किन्तु इस युग में ध्यान रखना चाहिए कि ब्राह्मण अपनी योग्यताओं के विषय में अनिश्चित हैं। याज्ञिक ब्राह्मणों के न होने से सारे यज्ञ वर्जित हैं। इस युग में एकमात्र संकीर्तन यज्ञ की संस्तुति की गई

है। *यज्ञै सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस:* (*भागवत* ११.५.३२)। यज्ञ विष्णु को तुष्ट करने के निमित्त किया जाता है (*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:*)। इस युग में योग्य ब्राह्मणों के न होने से मनुष्यों को चाहिए कि हरे कृष्ण-मंत्र के कीर्तन द्वारा यज्ञ करें (*यज्ञै सङ्कीर्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस:*)। यह जीवन यज्ञ के निमित्त है और यज्ञ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे कीर्तन द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार (सम्भवत: जब कृष्ण एक साल के थे); आरोहम्—अपनी माता की गोद में; आरूढम्—बैठे हुए; लालयन्ती—लाड़-प्यार करती हुई, दुलारती हुई; सुतम्—अपने पुत्र को; सती—माता यशोदा; गरिमाणम्—भार बढ़ने से; शिशो:—बालक के; वोढुम्—सहन कर पाने; न—नहीं; सेहे—समर्थ थी; गिरि-कूट-वत्—पर्वत की चोटी के भार जैसा लगने वाला।

एक दिन, कृष्ण के आविर्भाव के एक वर्ष बाद, माता यशोदा अपने पुत्र को अपनी गोद में दुलार रही थीं। तभी सहसा उन्हें वह बालक पर्वत की चोटी से भी भारी लगने लगा, जिससे वे उसका भार सहन नहीं कर पाईं।

तात्पर्य : *लालयन्ती*—कभी कभी माता अपने बच्चे को उछालती है और जब वह उसके हाथ में गिरता है, तो हँसता है। इससे माता को भी आनन्द आता है। यशोदा ऐसा ही करती थीं किन्तु इस बार कृष्ण बहुत भारी हो गये जिससे वे उनका भार नहीं सह सकीं। ऐसी परिस्थिति में हमें यह समझना चाहिए कि कृष्ण उस तृणावर्त के आगमन से अवगत थे, जो उन्हें उनकी माता से दूर उड़ा ले जाने वाला था। कृष्ण जानते थे कि जब तृणावर्त आकर उन्हें माता की गोद से ले जायेगा तो माता यशोदा अत्यन्त विरहाकुल होंगी। वे नहीं चाहते थे कि माता को असुर के कारण कोई कष्ट सहना पड़े। चूँकि वे प्रत्येक वस्तु के उद्गम हैं (*जन्माद्यस्य यत:*) अतएव उन्होंने सारे ब्रह्माण्ड का भार अपने में धारण कर लिया। बालक यशोदा की गोद में था जिसका संसार की हर वस्तु पर स्वामित्व था, किन्तु जब बालक भारी हो गया तो यशोदा को उसे गोद से नीचे रखना पड़ा जिससे तृणावर्त को अवसर मिले कि वह उसे ले जाय और बालक के माता की गोद में लौटने तक कुछ काल तक उनके साथ खेले।

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भूमौ—जमीन पर; निधाय—रख कर; तम्—उस बालक को; गोपी—माता यशोदा; विस्मिता—चकित; भार-पीडिता—बच्चे के भार से दुखित; महा-पुरुषम्—विष्णु या नारायण को; आदध्यौ—शरण ली; जगताम्—मानो सारे जगत का भार हो; आस—अपने को व्यस्त किया; कर्मसु—घर के अन्य कामों में।

बालक को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बराबर भारी अनुभव करते हुए अतएव यह सोचते हुए कि बालक को कोई दूसरा भूत-प्रेत या असुर सता रहा है, चकित माता यशोदा ने बालक को जमीन पर रख दिया और नारायण का चिंतन करने लगीं। उत्पात की आशंका से उन्होंने इस भारीपन के शमन हेतु ब्राह्मणों को बुला भेजा और फिर घर के कामकाज में लग गईं। उनके पास नारायण के चरणकमलों को स्मरण करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प न था क्योंकि वे यह नहीं समझ पाईं कि कृष्ण ही हर वस्तु के मूल स्त्रोत हैं।

तात्पर्य : माता यशोदा यह नहीं समझ पाईं कि कृष्ण वस्तुओं में से सबसे भारी हैं और वे सबों के भीतर निवास करते हैं (*मत्स्थानि सर्वभूतानि*)। *भगवद्गीता* (९.४) में पुष्टि की गई है—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—कृष्ण अपने निर्विशेष रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं और सारी वस्तुएँ उन्हीं पर टिकी हैं। फिर भी—*न चाहं तेष्ववस्थितः*—कृष्ण सर्वत्र नहीं रहते। माता यशोदा इस दर्शन को नहीं समझती थीं क्योंकि योगमाया की योजनानुसार वे कृष्ण की माता के रूप में उनके साथ व्यवहार कर रही थीं। कृष्ण की महत्ता को न समझ सकने से वे कृष्ण की सुरक्षा के लिए केवल नारायण की शरण ले सकती थीं और इस दशा के शमन हेतु ब्राह्मणों को बुला सकती थीं।

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दैत्यः—दूसरा असुर; नाम्ना—नाम वाला; तृणावर्तः—तृणावर्त; कंस-भृत्यः—कंस का दास; प्रणोदितः—उसके द्वारा प्रेरित; चक्रवात-स्वरूपेण—बवंडर के रूप में; जहार—उड़ा ले गया; आसीनम्—बैठे हुए; अर्भकम्—बालक को।

जब बालक जमीन पर बैठा हुआ था, तो तृणावर्त नामक असुर, जो कंस का दास था, वहाँ पर कंस के बहकाने पर बवंडर के रूप में आया और बड़ी आसानी से बालक को अपने साथ उड़ाकर आकाश में ले गया।

तात्पर्य : कृष्ण का भारीपन माता के लिए असह्य था किन्तु जब तृणावर्तासुर आया तो वह उन्हें

तुरन्त उड़ा ले गया। यह कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का दूसरा प्रदर्शन था। जब तृणावर्त आया तो कृष्ण तिनके से भी अधिक हल्के हो गये जिससे वह उन्हें उड़ा ले जा सके। यह उनका *आनन्दचिन्मय रस* था।

गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

गोकुलम्—गोकुल मंडल को; सर्वम्—समूचे; आवृण्वन्—प्रच्छन्न करते हुए; मुष्णन्—हरते हुए; चक्षूंषि—देखने की शक्ति; रेणुभिः—धूल के कणों से; ईरयन्—कँपाते हुए; सु-महा-घोर—अत्यन्त भयानक तथा भारी; शब्देन—आवाज से; प्रदिशः दिशः—सारी दिशाओं में घुस गया।

उस असुर ने प्रबल बवंडर के रूप में सारे गोकुल प्रदेश को धूल के कणों से ढकते हुए सभी लोगों की दृष्टि ढक ही ली और भयावनी आवाज करता हुआ सारी दिशाओं को कँपाने लगा।

तात्पर्य : तृणावर्त ने बवंडर का रूप धारण कर लिया और समूचे गोकुल प्रदेश को धूल भरे अंधड़ से ढक दिया जिससे निकट की भी वस्तु नहीं दिखती थी।

मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

मुहूर्तम्—क्षण-भर के लिए; अभवत्—हो गया; गोष्ठम्—समूचे चरागाह में; रजसा—धूल-कणों से; तमसा आवृतम्—अंधकार से प्रच्छन्न; सुतम्—अपने पुत्र को; यशोदा—माता यशोदा ने; न अपश्यत्—नहीं देखा; तस्मिन्—उसी स्थान में; न्यस्तवती—रखा था; यतः—जहाँ।

क्षण-भर के लिए समूचा चरागाह धूल भरी अंधड़ के घने अंधकार से ढक गया और माता यशोदा अपने पुत्र को उस स्थान में न पा सकीं जहाँ उसे बिठाया था।

नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अपश्यत्—देखा; कश्चन—किसी को; आत्मानम्—अपने को; परम् च अपि—या दूसरे को; विमोहितः—मोहित होकर; तृणावर्त-निसृष्टाभिः—तृणावर्त द्वारा फेंके गये; शर्कराभिः—बालू के कणों से; उपद्रुतः—और विचलित किया जाकर।

तृणावर्त द्वारा फेंके गये बालू के कणों के कारण लोग न तो स्वयं को देख सकते थे न

अन्य किसी और को। इस तरह वे मोहित तथा विचलित थे।

इति खरपवनचक्रपांशुवर्षे
सुतपदवीमबलाविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्
भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; खर—अत्यन्त प्रचंड; पवन-चक्र—बवंडर से; पांशु-वर्षे—धूल-कणों की वर्षा होने पर; सुत-पदवीम्—अपने पुत्र के स्थान को; अबला—बेचारी स्त्री; अविलक्ष्य—न देखकर; माता—उसकी माता होने से; अति-करुणम्—अत्यन्त कारुणिक; अनुस्मरन्ती—अपने पुत्र का चिन्तन करती हुई; अशोचत्—अत्यधिक विलाप किया; भुवि—भूमि पर; पतिता—गिर गई; मृत-वत्सका—अपने बछड़े को खोकर; यथा—जिस तरह; गौः—गाय।

प्रबल बवंडर से उठे अंधड़ के कारण माता यशोदा न तो अपने पुत्र का कोई पता लगा सकीं, न ही कोई कारण समझ पाईं। वे जमीन पर इस तरह गिर पड़ीं मानों किसी गाय ने अपना बछड़ा खो दिया हो। वे अत्यन्त करुण-भाव से विलाप करने लगीं।

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो
भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं
पवन उपारतपांशुवर्षवेगे ॥ २५॥

शब्दार्थ

रुदितम्—करुणापूर्वक रोती हुई माता यशोदा; अनुनिशम्य—सुनकर; तत्र—वहाँ; गोप्यः—अन्य गोपियाँ; भृशम्—अत्यधिक; अनुतप्त—माता यशोदा के साथ विलाप करती; धियः—ऐसी भावनाओं से; अश्रु-पूर्ण-मुख्यः—तथा आँसुओं से पूरित मुखों वाली अन्य गोपियाँ; रुरुदुः—रो रही थीं; अनुपलभ्य—न पाकर; नन्द-सूनुम्—नन्द महाराज के पुत्र, कृष्ण को; पवने—बवंडर के; उपारत—बन्द हो जाने पर; पांशु-वर्ष-वेगे—धूल की वर्षा के वेग से।

जब अंधड़ तथा बवंडर का वेग घट गया, तो यशोदा का करुण क्रन्दन सुनकर उनकी सखियाँ—गोपियाँ—उनके पास आईं। किन्तु वे भी कृष्ण को वहाँ न देखकर अत्यन्त उद्विग्न हुईं और आँखों में आँसू भर कर माता यशोदा के साथ वे भी रोने लगीं।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रति गोपियों की अनुरक्ति विलक्षण तथा दिव्य है। गोपियों के सारे कार्यकलापों के केन्द्र कृष्ण थे। कृष्ण के रहने पर वे सुखी रहती थीं किन्तु उनके पास न होने पर वे दुखी थीं। इस तरह जब माता यशोदा कृष्ण के जाने से विलाप कर रही थीं तो अन्य स्त्रियाँ भी रोने लगीं।

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।

कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तृणावर्तः—तृणावर्त असुर; शान्त-रयः—झोंके का वेग घट गया; वात्या-रूप-धरः—जिसने प्रबल बवंडर का रूप धारण कर लिया था; हरन्—तथा ले गया था; कृष्णम्—कृष्ण को; नभः-गतः—आकाश में ऊँचे चला गया; गन्तुम्—आगे जाने के लिए; न अशक्नोत्—समर्थ न था; भूरि-भार-भृत्—क्योंकि कृष्ण असुर से भी अधिक शक्तिशाली तथा भारी थे।.

तृणावर्त असुर वेगवान बवंडर का रूप धारण करके कृष्ण को आकाश में बहुत ऊँचाई तक ले गया किन्तु जब कृष्ण असुर से भारी हो गये तो असुर का वेग रुक गया जिससे वह और आगे नहीं जा सका।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण तथा तृणावर्त की योगशक्ति में प्रतियोगिता दिखाई गई है। योगाभ्यास द्वारा असुरगण सामान्यतया आठ सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं—ये हैं अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। यद्यपि असुर कुछ हद तक ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं किन्तु वे कृष्ण की योगशक्ति से स्पर्धा नहीं कर सकते क्योंकि कृष्ण योगेश्वर हैं (*यत्र योगेश्वरो हरिः*)। कृष्ण से कोई होड़ नहीं ले सकता। निस्सन्देह, कभी कभी कृष्ण की योगशक्ति का एक अंश पाकर ये असुर अपनी शक्ति का प्रदर्शन मूर्ख जनता के समक्ष करते हैं और अपने को ईश्वर बतलाते हैं। वे यह नहीं जानते कि ईश्वर तो परम योगेश्वर हैं। यहाँ भी हम देखते हैं कि तृणावर्त *महिमा सिद्धि* प्राप्त करके कृष्ण को सामान्य बालक के रूप में उड़ा ले गया। किन्तु कृष्ण भी *महिमासिद्ध* योगी बन गये। जब माता यशोदा उन्हें लिये थीं तो वे इतने भारी हो गये कि माता जिन्हें कृष्ण को गोद में उठाने का अभ्यास था, यह भार सहन नहीं कर पाईं जिससे उन्हें नीचे जमीन पर रखना पड़ा। इस तरह तृणावर्त माता यशोदा की उपस्थिति में कृष्ण को ले जा सका। किन्तु जब कृष्ण ने आकाश में ऊँचाई पर महिमासिद्धि धारण की तो वह असुर आगे न जा सका अतः उसे अपनी शक्ति रोकनी ही पड़ी और कृष्ण की इच्छा के अनुसार नीचे आना पड़ा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्ण की योगशक्ति की बराबरी न करे।

भक्तों में सारी योगशक्ति स्वतः रहती है किन्तु वे कृष्ण से बराबरी नहीं करना चाहते। बल्कि वे कृष्ण को पूर्ण समर्पण कर देते हैं और उनकी योगशक्ति कृष्ण की कृपा से प्रदर्शित होती है। भक्तगण इतनी प्रबल योगशक्ति प्रदर्शित कर सकते हैं जिसकी कोई असुर कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु वे अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए कभी प्रदर्शन नहीं करना चाहते। वे जो कुछ भी करते हैं, भगवान् की

सेवा के लिए करते हैं फलत: वे असुरों से श्रेष्ठतर पद पर होते हैं। ऐसे अनेक कर्मी, योगी तथा ज्ञानी होते हैं, जो बनावटी तौर पर कृष्ण की बराबरी करना चाहते हैं अत: ऐसे सामान्य मूर्ख लोग जो विद्वानों से *श्रीमद्भागवत* सुनने की परवाह नहीं करते, किसी धूर्त योगी को भगवान् मानने लगते हैं। सम्प्रति ऐसे अनेक तथाकथित बाबा हैं, जो कोई तुच्छ योगशक्ति दिखाकर अपने को ईश्वर का अवतार बतलाते हैं। मूर्ख लोग कृष्ण विषयक ज्ञान के अभाव में इन बाबाओं को ईश्वर मान लेते हैं।

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

तम्—कृष्ण को; अश्मानम्—लोहे की तरह के भारी पत्थर; मन्यमान:—इस तरह सोचते हुए; आत्मन: गुरु-मत्तया—अनुमान से भी अधिक भारी होने के कारण; गले—उसकी गर्दन में; गृहीते—अपनी बाँहों से बँधा या आलिंगन किया जाकर; उत्स्रष्टुम्—छोड़ने के लिए; न अशक्नोत्—समर्थ नहीं था; अद्भुत-अर्भकम्—अद्भुत बालक को जो सामान्य बालक से भिन्न था।

कृष्ण के भार के कारण तृणावर्त उन्हें विशाल पर्वत या लोह का पिंड मान रहा था। किन्तु कृष्ण ने असुर की गर्दन पकड़ रखी थी इसलिए वह उन्हें फेंक नहीं पा रहा था। इसलिए उसने सोचा कि यह बालक अद्भुत है, जिसके कारण मैं न तो उसे ले जा सकता हूँ न ही इस भार को दूर फेंक सकता हूँ।

तात्पर्य : तृणावर्त कृष्ण को आकाश में ले जाकर मारना चाहता था किन्तु कृष्ण को तृणावर्त के शरीर पर सवारी करने और कुछ देर तक आकाश में यात्रा करने में आनन्द आ रहा था। इस तरह कृष्ण को मारने का उसका प्रयास असफल रहा किन्तु *आनन्दचिन्मय रस विग्रह* कृष्ण को इस लीला में खूब आनन्द आया। अब जबकि तृणावर्त कृष्ण के भार से नीचे गिरने लगा तो उसने अपने आप को बचाने के लिए कृष्ण को अपने गले से छुड़ाकर नीचे पटकना चाहा किन्तु वह ऐसा न कर पाया क्योंकि कृष्ण उसे बड़ी मजबूती से पकड़े थे। फलस्वरूप यह तृणावर्त की योगशक्ति की अन्तिम घड़ी थी। अब वह कृष्ण की योजना से मृत्यु के मुख में जा रहा था।

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचन: ।
अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८॥

शब्दार्थ

गल-ग्रहण-निश्चेष्टः—कृष्ण द्वारा गला पकड़े रहने से तृणावर्त का गला घुट रहा था और वह कुछ भी नहीं कर सका; दैत्यः—असुर; निर्गत-लोचनः—दबाव से आँखें बाहर निकल आईं; अव्यक्त-रावः—गला घुटने से उसकी कराह भी नहीं निकल पायी; न्यपतत्—गिर पड़ा; सह-बालः—बालक सहित; व्यसुः व्रजे—व्रज की भूमि पर निर्जीव।

कृष्ण ने तृणावर्त को गले से पकड़ रखा था इसलिए उसका दम घुट रहा था जिससे वह न तो कराह सकता था, न ही अपने हाथ-पैर हिला-डुला सकता था। उसकी आँखें बाहर निकल आईं थी, उसके प्राण निकल गये और वह उस छोटे बालक सहित व्रज की भूमि पर नीचे आ गिरा।

तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां
विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं
स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस असुर को; अन्तरिक्षात्—आकाश से; पतितम्—गिरा हुआ; शिलायाम्—चट्टान पर; विशीर्ण—बिखरा, छिन्न-भिन्न; सर्व-अवयवम्—शरीर के सारे अंग; करालम्—अत्यन्त विकराल हाथ-पाँव; पुरम्—त्रिपुरासुर का स्थान; यथा—जिस तरह; रुद्र-शरेण—शिवजी के बाण से; विद्धम्—बेधा गया; स्त्रियः—सारी स्त्रियाँ, गोपियाँ; रुदत्यः—कृष्ण वियोग के कारण रोती हुईं; ददृशुः—अपने सामने ही देखा; समेताः—एकसाथ।

जब वहाँ एकत्र गोपियाँ कृष्ण के लिए रो रही थीं तो वह असुर आकाश से पत्थर की एक बड़ी चट्टान पर आ गिरा, जिससे उसके सारे अंग छिन्न-भिन्न हो गये मानो भगवान् शिवजी के बाण से बेधा गया त्रिपुरासुर हो।

तात्पर्य : दिव्य भक्ति में ज्योंही भगवद्भक्त शोकाकुल हो जाते हैं, तो उन्हें भगवान् के दिव्य कार्यकलापों का अनुभव होने लगता है और वे दिव्य आनन्द में मग्न हो जाते हैं। वास्तव में ऐसे भक्त सदैव दिव्य आनन्द को प्राप्त रहते हैं और ऐसी ऊपरी विपदाएँ उस आनन्द को और अधिक वर्धित करती हैं।

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः
कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं
विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ।
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या
लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

प्रादाय—उठाकर; मात्रे—उनकी माता को; प्रतिहृत्य—हाथों में सौंप दिया; विस्मिताः—सारे लोग अचंभित थे; कृष्णम् च—तथा कृष्ण को; तस्य—असुर की; उरसि—छाती पर; लम्बमानम्—स्थित; तम्—कृष्ण को; स्वस्तिमन्तम्—समस्त कल्याण से युक्त; पुरुषाद-नीतम्—मानवभक्षी असुर द्वारा ले जाया गया; विहायसा—आकाश में; मृत्यु-मुखात्—मृत्यु के मुँह से; प्रमुक्तम्—अब मुक्त हुए; गोप्यः—गोपियाँ; च—तथा; गोपाः—ग्वाले; किल—निस्सन्देह; नन्द-मुख्याः—नन्द महाराज इत्यादि; लब्ध्वा—पाकर; पुनः—फिर (उनका पुत्र); प्रापुः—प्राप्त किया; अतीव—अत्यधिक; मोदम्—आनन्द।

गोपियों ने तुरन्त ही कृष्ण को असुर की छाती से उठाकर माता यशोदा को लाकर सौंप दिया। वे समस्त अशुभों से मुक्त थे। चूँकि बालक को असुर द्वारा आकाश में ले जाये जाने पर भी किसी प्रकार की चोट नहीं आई थी और वह अब सारे खतरों तथा दुर्भाग्य से मुक्त था इसलिए नन्द महाराज समेत सारे ग्वाले तथा गोपियाँ अत्यन्त प्रसन्न थे।

तात्पर्य : असुर आकाश से पीठ के बल गिरा और कृष्ण उसकी छाती पर बिना चोट खाये और किसी दुर्घटना से ग्रस्त हुए बिना खेल रहे थे। आकाश में असुर द्वारा दूर तक ले जाये जाने पर भी कृष्ण तनिक भी विचलित नहीं थे। कृष्ण से खेल रहे थे और आनंद ले रहे थे। यही है *आनन्दचिन्मय रस विग्रह।* वे हर हालत में *सच्चिदानन्द विग्रह* हैं। उन्हें कोई दुख नहीं सताता। अन्यों ने भले ही सोचा हो कि वे संकट में थे लेकिन असुर की छाती इतनी चौड़ी थी कि वे प्रसन्नतापूर्वक उसी पर खेल रहे थे। यह सबसे अधिक आश्चर्य की बात थी कि यद्यपि असुर आकाश में बहुत ऊँचाई तक उन्हें ले गया था किन्तु वे गिरे नहीं। इस तरह बालक कृष्ण एक तरह से मृत्यु के मुँह से बाल-बाल बचे थे। उनके सुरक्षित रहने से वृन्दावन के सारे निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे।

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा
बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः
साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; बत—निस्सन्देह; अति—अत्यन्त; अद्भुतम्—यह घटना बड़ी अद्भुत है; एषः—यह (बालक); रक्षसा—मानवभक्षी असुर के द्वारा; बालः—अबोध बालक कृष्ण; निवृत्तिम्—मार कर खाये जाने के लिए ले जाया गया; गमितः—दूर चला गया; अभ्यगात् पुनः—किन्तु वह बिना चोट लगे वापस आ गया; हिंस्रः—ईर्ष्यालु; स्व-पापेन—अपने ही पापपूर्ण कार्यों से; विहिंसितः—अब (वही असुर) मारा जा चुका है; खलः—दुष्ट होने के कारण; साधुः—पाप से रहित तथा निर्दोष व्यक्ति; समत्वेन—समान होने से; भयात्—सभी प्रकार के भय से; विमुच्यते—छूट जाता है।

यह सबसे अधिक आश्चर्य की बात है कि यह अबोध बालक इस राक्षस द्वारा खाये जाने के लिए दूर ले जाया जाकर भी बिना मारे या चोट खाये वापस लौट आया। चूँकि राक्षस ईर्ष्यालु, क्रूर तथा पापी था, इसलिए वह अपने पापपूर्ण कृत्यों के लिए मारा गया। यही प्रकृति का नियम

है। निर्दोष भक्त की रक्षा सदैव भगवान् द्वारा की जाती है और पापी व्यक्ति को अपने पापमय जीवन के लिए दण्ड दिया जाता है।

तात्पर्य : कृष्णभावनाभावित जीवन का अर्थ है निष्पाप भक्तिमय जीवन। *साधु* वह है, जो पूरी तरह कृष्ण में अनुरक्त हो। कृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३०) में पुष्टि की है— *भजते मां अनन्य-भाक् साधुरेव स मन्तव्य:*—कृष्ण के प्रति पूर्णरूपेण अनुरक्त व्यक्ति *साधु* है। नन्द महाराज, गोपियाँ तथा अन्य ग्वाले यह समझ ही नहीं सके कि कृष्ण भगवान् होकर मानवी बालक की भूमिका अदा कर रहे हैं और उनका जीवन किसी भी परिस्थिति में खतरे में नहीं था। प्रत्युत कृष्ण के प्रति उत्कट वात्सल्य-प्रेम के कारण वे कृष्ण को अबोध बालक मान रहे थे जिसे भगवान् ने बचा लिया था।

इस भौतिक जगत में अतीव काम तथा भोगेच्छा के कारण मनुष्य अधिकाधिक पापपूर्ण जीवन में फँसता जाता है (*काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव:*)। इसलिए भौतिक जीवन के पक्षों में से भय एक है (*आहारनिद्राभयमैथुनं च*)। किन्तु कृष्णभावनाभावित होने पर भक्ति की विधि अर्थात् *श्रवणं कीर्तनं* इस जगत के कलुषित जीवन को घटा देते हैं। इससे वह शुद्ध बनकर भगवान् द्वारा संरक्षित हो जाता है। *श्रृण्वतां स्वकथा: कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तन: ।* भक्तिमय जीवन में मनुष्य की इस विधि में श्रद्धा रहती है। ऐसी श्रद्धा छ: प्रकार की शरणागतियों में से एक है। *रक्षिष्यतीति विश्वास:* (*हरि भक्ति* ११.६७६)। शरणागति की एक विधि यह भी है कि मनुष्य इस विश्वास से एकमात्र कृष्ण पर आश्रित रहे कि वे उसकी सभी प्रकार से रक्षा करेंगे। कृष्ण अपने भक्त की रक्षा करते हैं—यह तथ्य है और नन्द महाराज तथा वृन्दावन के अन्य निवासियों ने इसे सहज ही स्वीकार कर लिया, यद्यपि उन्हें ज्ञात न था कि साक्षात् भगवान् उनके समक्ष हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें प्रह्लाद महाराज या ध्रुव महाराज जैसे भक्त को उसके पिता ने सताया किन्तु तो भी सभी परिस्थितियों में उसकी रक्षा हुई। अत: हमारा एकमात्र यह धर्म है कि हम कृष्णभावनाभावित होकर रक्षा के लिए कृष्ण पर पूरी तरह से आश्रित रहें।

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं
पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्सम्परेत: पुनरेव बालको
दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थित: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

किम्—किस तरह की; नः—हमारे द्वारा; तपः—तपस्या; चीर्णम्—दीर्घकाल तक की गई; अधोक्षज—भगवान् की; अर्चनम्—पूजा; पूर्त—सड़कें बनवाना इत्यादि.; इष्ट—जनकल्याण कार्य; दत्तम्—दान देना; उत—अथवा और कुछ; भूत-सौहृदम्—जनता के प्रति प्रेम होने से; यत्—जिसके कारण; सम्परेतः—मृत्यु को प्राप्त होने पर भी; पुनः एव—फिर से, अपने पुण्यों के कारण; बालकः—बालक; दिष्ट्या—भाग्य द्वारा; स्व-बन्धून्—निजी सम्बन्धियों को; प्रणयन्—प्रसन्न करने के लिए; उपस्थितः—यहाँ उपस्थित है।.

नन्द महाराज तथा अन्य लोगों ने कहा : हमने अवश्य ही पूर्वजन्म में दीर्घकाल तक तपस्या की होगी, भगवान् की पूजा की होगी, जनता के लिए सड़कें तथा कुएँ बनवाकर पुण्य कर्म किये होंगे और दान भी दिया होगा जिसके फलस्वरूप मृत्यु के मुख में गया हुआ यह बालक अपने सम्बन्धियों को आनन्द प्रदान करने के लिए लौट आया है।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने पुष्टि की कि पुण्य कर्मों से मनुष्य साधु बन सकता है, जिससे वह घर में सुखी रह सकता है और उसके बाल-बच्चे सुरक्षित रह सकते हैं। शास्त्र में कर्मियों तथा ज्ञानियों के लिए, विशेष रूप से कर्मियों के लिए अनेक आदेश हैं जिनसे वह पवित्र बन सकते हैं और भौतिक जीवन में भी सुखी हो सकते हैं। वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि जनता के लाभ के लिए कार्य करे—यथा सड़कें बनवाये, सड़कों के दोनों ओर वृक्ष लगवाये जिससे लोग छाया में चल सकें, सार्वजनिक कुँए खुदवाये जिससे हर एक को बिना किसी कठिनाई के जल मिल सके। अपनी इच्छाओं को वश में रखने के लिए मनुष्य को तपस्या करनी चाहिए और उसी के साथ साथ भगवान् की पूजा करनी चाहिए। इस तरह वह पवित्र बन जाता है और उसी के फलस्वरूप वह भौतिक जीवन में भी सुखी हो सकता है।

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अद्भुतानि—अतीव अद्भुत घटनाओं को; बहुशः—अनेक बार; नन्द-गोपः—गोपों के मुखिया नन्द महाराज; बृहद्वने—बृहद्वन में; वसुदेव-वचः—वसुदेव के वचन, जो उन्होंने मथुरा में नन्द से कहे थे; भूयः—बारम्बार; मानयाम् आस—मान लिया कि कितने सच थे; विस्मितः—अतीव विस्मय में।.

बृहद्वन में इन सारी घटनाओं को देखकर नन्द महाराज अधिकाधिक आश्चर्यचकित हुए और उन्हें वसुदेव के वे शब्द स्मरण हो आये जो उन्होंने मथुरा में कहे थे।

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; अर्भकम्—बालक को; आदाय—लेकर; स्व-अङ्कम्—अपनी गोद में; आरोप्य—तथा बैठाकर; भामिनी—माता यशोदा ने; प्रस्नुतम्—स्तनों से दूध बहता हुआ; पाययाम् आस—बच्चे को पिलाया; स्तनम्—अपने स्तन; स्नेह-परिप्लुता—अतीव स्नेह तथा प्रेम से युक्त।

एक दिन माता यशोदा कृष्ण को अपनी गोद में बैठाकर उन्हें मातृ-स्नेह के कारण अपने स्तन से दूध पिला रही थीं। दूध उनके स्तन से चू रहा था और बालक उसे पी रहा था।

पीतप्रायस्य जननी सुतस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजञ्जृम्भतो दद्दशे इदम् ॥ ३५ ॥
खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः
सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितृर्वनानि
भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

पीत-प्रायस्य—स्तन-पान करते तथा संतुष्ट बालक कृष्ण की; जननी—माता यशोदा; सुतस्य—अपने पुत्र की; रुचिर-स्मितम्—तुष्ट मुसकान को देखती; मुखम्—मुँह को; लालयती—दुलारती हुई; राजन्—हे राजा; जृम्भतः—बच्चे को अँगड़ाई लेते; दद्दशे—उसने देखा; इदम्—यह; खम्—आकाश; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों; ज्योतिः-अनीकम्—ज्योतिपुंज; आशाः—दिशाएँ; सूर्य—सूर्य; इन्दु—चंद्रमा; वह्नि—अग्नि; श्वसन—वायु; अम्बुधीन्—समुद्र; च—तथा; द्वीपान्—द्वीप; नगान्—पर्वत; तत्-दुहितृः—पर्वतों की पुत्रियाँ (नदियाँ); वनानि—जंगल; भूतानि—सारे जीव; यानि—जो हैं; स्थिर-जङ्गमानि—अचर तथा चर।

हे राजा परीक्षित, जब बालक कृष्ण अपनी माता का दूध पीना लगभग बन्द कर चुके थे और माता यशोदा उनके सुन्दर कान्तिमान हँसते मुख को छू रही थीं और निहार रही थीं तो बालक ने जम्हाई ली और माता यशोदा ने देखा कि उनके मुँह में पूरा आकाश, उच्च लोक तथा पृथ्वी, सभी दिशाओं के तारे, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, जंगल तथा चर-अचर सभी प्रकार के जीव समाये हुए हैं।

तात्पर्य : योगमाया की व्यवस्था से माता यशोदा के साथ कृष्ण की लीलाएँ सामान्य मानी जाती थीं। इसलिए कृष्ण के हाथ अच्छा अवसर आया कि वे अपनी माता को दिखा दें कि सारा ब्रह्माण्ड उनके भीतर स्थित है। कृष्ण ने अपने नन्हें रूप में ही अपनी माता को *विराट् रूप* का दर्शन कराना चाहा जिससे उन्हें यह देखकर आनन्द आ सके कि जिस बालक को वे गोद में लिये हैं वह किस तरह का बालक है। यहाँ पर नदियों को पर्वतों की पुत्रियाँ (*नगांश्च तद्दुहितृ*) कहा गया है। नदियों के बहने से ही विशाल जंगल बनते हैं। जीव सर्वत्र हैं जिनमें से कुछ चर हैं और कुछ अचर। कोई भी स्थान शून्य नहीं। ईश्वर की सृष्टि की यह एक विशेषता है।

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्सञ्जातवेपथुः ।
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा; वीक्ष्य—देखकर; विश्वम्—सम्पूर्ण विश्व को; सहसा—अचानक अपने पुत्र के मुँह के भीतर; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); सञ्जात-वेपथुः—उनका हृदय धक् धक् करने लगा; सम्मील्य—खोल कर; मृगशाव-अक्षी—मृगनैनी; नेत्रे—उसकी दोनों आँखें; आसीत्—हो गईं; सु-विस्मिता—आश्चर्यचकित।

जब यशोदा माता ने अपने पुत्र के मुखारविन्द में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा तो उनका हृदय धक् धक् करने लगा तथा आश्चर्यचकित होकर वे अपने अधीर नेत्र बन्द करना चाह रहती थीं।

तात्पर्य : माता यशोदा ने शुद्ध मातृ-प्रेम के कारण सोचा कि यह अद्‌भुत बालक जो तरह-तरह के खेल कर रहा है अवश्य ही रोगग्रस्त है। उन्होंने बालक द्वारा प्रदर्शित आश्चर्यों की प्रशंसा नहीं की प्रत्युत वे अपनी आँखें मूँद लेना चाहती थीं। उन्हें अन्य खतरे की सम्भावना थी इसलिए उनकी आँखें मृगी के बच्चे की आँखों के समान अधीर हो रही थीं। यह सब योगमाया की व्यवस्था थी। माता यशोदा तथा कृष्ण के बीच शुद्ध मातृ-प्रेम का सम्बन्ध है। इसी प्रेम के कारण माता यशोदा भगवान् के ऐश्वर्य-प्रदर्शन को ठीक से समझ नहीं पाईं।

इस अध्याय के प्रारम्भ में कहीं कहीं दो अतिरिक्त श्लोक प्रकट होते हैं—

एवं बहूनि कर्माणि गोपानां शं सयोषिताम्।

नन्दस्य गेहे ववृधे कुर्वन् विष्णुजनार्दनः॥

''इस तरह असुरों को दण्ड देने और उनका वध करने के लिए बालक कृष्ण ने नन्द महाराज के घर में अनेक लीलाएँ प्रदर्शित कीं और व्रजवासियों ने इन घटनाओं का आनन्द लिया।''

एवं स ववृधे विष्णुर्नन्दगेहे जनार्दनः।

कुर्वन् अनिशमानन्दं गोपालानां स-योषिताम्॥

''गोपों तथा गोपियों के दिव्य आनन्दवर्धन के लिए समस्त असुरों के वधकर्ता कृष्ण अपने पिता तथा माता, नन्द एवं यशोदा द्वारा इस तरह पाले गये।''

श्रीपाद विजयध्वज तीर्थ ने इस अध्याय के तीसरे श्लोक के बाद एक अन्य श्लोक जोड़ दिया है :

विस्तरेणेह कारुण्यात् सर्वपापप्रणाशनम्।

वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ दयालुस्त्वमिति प्रभो॥

''तब परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से कृष्ण-लीलाओं से सम्बन्धित ऐसी कथाएँ कहते रहने का अनुरोध किया जिससे राजा उनसे दिव्य आनन्द प्राप्त कर सकें।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''तृणावर्त का वध'' नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।